भोटदेशीय विभिन्न बौद्ध सम्प्रदायों की उत्पत्ति

-Dr. Chowang Acharya

नमोबुद्धाय

परमश्रद्धेयप्रमुख महापुरूष गुरू पद्मा सम्भव, दसों दिशाओं में स्थित बुद्ध, बोधिसत्व, आर्य श्रावक एवं प्रत्येक बुद्ध आदि पूज्य गणों के चरणों में अपनी श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए मैं भोटदेशीय विभिन्न सम्प्रदायों की उत, एवं निङमा (पूर्वअनूदित) परम्परा के मान्य सिद्धान्तों के सम्बन्ध मे संक्षिप्त विचार प्रस्तुत करने जा रहा हूँ।

सामान्यतःहिमवत् देशीय यानी भोटदेशीय विभिन्न सम्प्रदायों के विकास क्रम को दो प्रकार से प्रस्तुत किया जा सक्ता है- 1,बाह्य ऐतिहासिक दृष्टि से,2, सिद्धों के आधार पर।

1 यीशापूर्व द्वितीय शताब्दी (129 B.C.) में भोटदेशीय प्रथम राजा न-ठ्रि-चन पो के राज्यकाल का प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् यीशवीय् चौथी सदी में बोधिसत्व समन्तभद्र के विनिर्मित काय भोटदेशीय राजवंश के सत्ताइसवें राजा ल्हा-थो-थो-रि-नन्-चन् के राज्यकाल में उनके महल कीं छत पर नन्-पो-सङ-वा (जिसमे दो पोथी एवं एक स्तूप विमान था)अवरित हुए। राजा द्वारा उन वस्तुवों की पूजा अर्चना आदि कार्य से भोट देश में बुद्धशासन का प्रारम्भ होता हैं।

तत्पश्चात्छवी-सातवीं शताब्दी में भोटदेशीय राजवंश के 33वें राजा, धर्मराज स्रोंङ-चन-गम-पो जिन्हे

आर्यावलोकितेश्वर का निर्माण काय माना जाता है, के काल में सम्भोट द्वारा भोटी लिपि का निर्माण प्रारम्भ किया गया और मणि-क-बुम नामक ग्रन्थ को सर्वप्रथम उसी लिपि में लिखा गया। स्वयं राजा ने परोक्ष रूप से प्रच्छन्न तान्त्रिक योगियों को गुहय तन्त्रोंका उपदेश दिया। इस तरह उस काल में बुद्ध शासन के विकासका प्रारम्भ आंशिक रूप मे हुआ।

तत्पश्चात् आठ्वीं सदी में भट्टारक मंजुघोष के निर्माण काय अडतीसवें राजा धर्मराज ठ्रि-स्रोङ देउ-चन के काल में स्वतान्त्रिक माध्यमक महारथी महोपाध्याय शान्तरक्षित, जम्बूद्धीप मेंअलौकिक शक्ति बल सम्पन्न, सोंद्देश्य मानव रूपधारी योगेश्वर आचार्य पद्मा सम्भव और पाँच सौ पण्डितों के शिरोभूषण महापण्डित विमलमित्र आदि सिद्ध एवं पण्डितों को भारत से आमन्त्रित कर "सम-ये" नामक महाविहार का निर्माण किया गया। वहां महा अनुवादक लो-चा-वा वैरोचन एवं का-वा-पल-चेग आदिं एक सौ आठ वरिष्ठ तथा एक हजार दो कनिष्ठ लोचावा एकत्रित हुए। जिन लोगों ने आर्यावर्त से लाये गये प्रज्ञापारमितासूत्र एवं गुहय मर्मतन्त्र आदि सूत्र-तन्त्र एवं उनसे सम्बन्धित अनेक शास्त्रों का भोटीय अनुवाद प्रस्तुत किया गया, इतना ही नहीं, इन शास्त्रों को श्रवण-चिन्तन एवं भावना आदि के क्रम से प्रतिपादित किया गया, विशेष्तः महोपाध्याय शन्तरक्षित ने परीक्षण के रूप में सात योग्य व्यक्तियों को प्रव्रजित किया, एवं सूत्र पक्ष के दर्शन, आचरण तथा भावना इन सभी विषयों की विवेचना भी की।

आचार्य पद्मासम्भव द्वारा सर्वप्रथम अष्ट साधन मणडलों को उद्घाटित किये जाने पर भोट देश में उनके प्रधान शिष्य "जे-बङ-नेर्-ङ" आदि पच्चीस शिष्य सिद्धि प्राप्त अप्रमेय योगियों का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार आचार्य ने बाहय एवं आभ्यन्तर

सभी प्रकार के गुहय तन्त्रों का तथा विशेष रूप से "अतियोग" नय का प्रचार किया। उसी प्रकार महापण्डित विमलमित्र, महान लोचा-वा वैरोचन, पण्डित विश्वामित्र आदि लोगों ने अतियोग के "दो-ग्युद-सेम-सुम" अर्थात सुत्र, माया, चित आदि अनुत्तर तन्त्रों से सम्बन्धित शास्त्रों का न केवल अनुवाद एवं सम्पादन ही किया अपितु पूर्ण रूप से अभिषेक, आगम, अववाद आदि द्वारा सूत्र एवं तन्त्र के शासन को सूर्य के प्रकाश की भाँति फैलाया भी।

नवीं शताब्दी में गुहयवज्रपांणि के विनिमिति काय राजा ङ-दग-ठ्रि रल-पाचन ने भारत से आचार्य कमलशील को आमन्त्रित कर चीन के विद्वान ह-शङ के कुदर्शन का निराकरण कराया, साथ ही यह आदेश भी दिया कि अब से भोट देश में दर्शन तो नागार्जुन का और आचार उपाध्याय शान्तरक्षित के मतानुसार ही चलेगा। सूत्र, शास्त्र आदि जो उस समय तक अनूदित हो चुके थे, उन्हें नई भाषा के आधार पर अनुवद्ध किया गया, जिनका अनुवाद पहले नहीं हुआ था, उन शास्त्रों को पूर्ण रूप से अनूदित किया गया, और उन्हें श्रवण, मनन एवं भावना द्वारा प्रतिपादित भी किया गया।

" छोस्-ग्यल-मे-ओन-नम-सुम" अर्थात धर्मराज "स्रोंङ-चन-गम पो, ठ्रि-सोङ-देउ-चन" और ठ्रि-रलपा चन के समय भारत में जो बुद्धशासन महारथियों के हाथ मे अअक्षुण्ण रूप से विद्यमान था वहीं शासन यथावत् भोट देश में पहूँचा, उसी को पूर्व अनूदित यानी निङ-मा-पा कहा जाता है, भोट देश में अविच्छिन्न रूप से अब तक जो बौध्दशासन चला आ रहा है, वह इन्हीं महानुभावों के अतिशय परिश्रम तथा लगन का फल है, यह हमें जानना चाहिए।

उसके बाद ग्यारहवीं सदी के परवर्ती शासन काल में "मर-पा लो-चा वा" ने आर्यावर्त के विद्वान श्री नङ-पा से "नरो छोस्-डुग" आदि नङ-पा परम्परा के छह धर्मो सहित सूत्र, तन्त्र धर्मो का भी श्रवण किया और पारङगत अभ्यास भी किया। संक्षेप में"मर-मि-दग-सुम" अर्थात मर-पा,मि-ला दग-पो-पा, की परम्परा वाले बुद्धशासन को "का-ग्युद-पा" कहा जाता है।

बारहवीं सदी के परार्ध में भट्टारक मंजुघोष के विनिर्मित काय साक्य पण्डित "कुन-ग-ग्यल-छन"- ने कश्मीरी पण्डित शाक्य श्री से उपसम्पदा ग्रहण की। इस प्रकार "स-छेन-गोङ-म-ङ" से क्रमश चले आ रहे बुद्धशासन को साक्य पा कहा जाता है।

उसके बाद चौदहवीं सदी के अन्त में दीपङ्कर श्री ज्ञान के विनिर्मित काय भट्टारक "लो सङ-डाग-पा" (सुमति कीर्ति) द्वारा प्रतिपादित त्रिविध पुद्गलों के मार्ग की व्यवस्था तथा प्रासङ्गिक माध्यमिकों की आठ विशेषताओं की उदान्त व्याख्या परम्परा वाले तीन गुरू शिष्यों द्वारा क्रमश विकसित बुद्धशासन को "रि-वो-गा-दन-पा" अर्थात गेलुग-पा कहा जाता है।

आध्यात्मिक भेद

सूत्र की दृष्टि से माध्यामिक दर्शन की व्याख्या का भेद, सूत्रों का नेयार्थ, नीतार्थ विभङ्गनय से एवं शास्त्रों की व्याख्या विधि के आधार पर सम्प्रदायों का भेद होता है। निङमा-पा-चित्त में चिन्त का न होना, चित्त का प्रभास्वर है। इस प्रभास्वर एवं शून्ययुगल को प्रमुख आधार बनाकर, जिन सूत्रों में प्रमुख अभिधेय प्रमुख रूप से परमार्थ सत्य होता है, उसे नीतार्थ कहा जाता है, क्योंकि उनमें अभिप्राय प्रयोजन एवं साक्षात् बाधा

नहीं हुआ करती है। जिन सूत्रों में प्रमुख अभिधेय संवृति सत्य होता है,उसे नेयार्थ कहा जाता है,क्योंकि उनका अभिप्राय आदि अलग से विद्यमान होता है। इस तरह बुद्ध के प्रथम प्रवचन को स्कन्ध आदि संवृति के प्रमुख अभिधेय होने से नेयार्यक ही माना जाता है, द्वितीय प्रवचन को आभास शून्य सत्यों की सभी प्रपंचों से वियुक्त शून्यता प्रधान अभिधेय होने से नीतार्थक ही माना जाता है। अन्तिम (पश्चिम) प्रवचन में स्थिति एवं आभासमान सत्यद्वय के रूप में स्थित एवं आभास की समानता वाले तथागतार्भ के प्रतिपादक दससूत्रों को भी नितार्थ ही माना जाता है। संक्षेप में, मध्यवचन मे तथागतगर्भ की शून्यता के अंश प्रकृतिगोत्र एवं पश्चिम वचन में प्रभास्वर उपचयगोत्र का प्रतिपादन होने से वास्तव में दोनों वचनोंमें प्रभास्वर एवं शुन्यता दोनों का युगनद्ध अन्तिम धर्मता का निर्देश होने से दोनों वचन नीतार्थ ही माने गये हैं।

का-ग्युद परम्परा के अनुसार प्रभास्वर अंश को ही प्रधान मानकर प्रथम वचन को नेयार्थ एवं मध्य वचन को नेयार्थ नीतार्थ दोनों का सम्मिश्रण और पश्चिम वचन को नीतार्थ मात्र माना जाता है।

श्री साक्य-पा- "शून्यता विषय तो नीतार्थ ही जानना चाहिए"। इस वचन के अनुसार प्रथम वचन नेयार्थ, मध्य नीतार्थ और पश्चिम वचन को केवल नेयार्थ ही मानते हैं।

गादन-पा-इन से कुछभिन्न प्रथम वचन को नेयार्थ नीतार्थ का सम्मिश्रण मध्य वचन को मात्र नीतार्थ एवं पश्चिम वचन को मात्र नेयार्थ मानते हैं।

दुसरा शास्त्रों की व्याख्या विधि की दृष्टि से

मध्य वचन की व्याख्या "अभिसमयालङ्कार" को साक्य विद्वान यग-स्तोन तथा का-ग्युद के कर्मा-मि-क्योद दोर्जे आदि प्रासंगिक माध्यमिक प्रस्थान का शास्त्र मानते है। जे चोङ खा-पा एवं बु-स्तोन आदि इसे स्वतान्त्रिक माध्यमिक शास्त्र मानते है। ङ-ग्युर निङ-मा-पा स्वतान्त्रिक एवं प्रासंगिक माध्यमिक दोनों का साधारण ग्रन्थ मानते हैं, क्योंकि यह ग्रन्थ मातृका माध्यमिक अर्थात प्राचीन माध्यमिक मत का शास्त्र है, और कालान्तर में इसी से स्वतान्त्रिक एवं प्रासंगिक अलग-अलग दो मत निकले है, फिर भी इसका वास्तविक अभिप्राय प्रासंगिक ही रहा है, इसी प्रकार नागार्जुन का "मूल मध्यमक शास्त्र" भी दोनों माध्यमिक का आधारभूत होने से मातृक यानी मूलभूत मध्यमक है। इस प्रकार मध्यवचन का साक्षात् निर्दिष्टार्थ एवं प्रच्छन्नार्थ दोनों को विरोधी न मानना, निङ-मा-पा की विशेषता है। अन्यथा मैत्रेय एवं नागार्जुन में से किसी के अपवाद होने का प्रसंग होगा। पश्चिम वचन की व्याख्या "उत्तर तन्त्र" को भी साक्य-पा एवं गेलुग-पा विद्वान विज्ञानवादी शास्त्र मानते हैं। वस्तुत: इसमें अन्तिम एक गोत्र एवं एक ही यान का प्रतिपादन होने से यह माध्यमिक मत का ही शास्त्र है।

इस प्रकार "अभिसमयालङकार" में श्रावक प्रत्येक बुद्ध के धर्म नैरात्म्य ज्ञान न होने की एवं "मध्यमकावतार" में उनके धर्मनैरात्मय ज्ञान होने की जो बात कही गई है, उनमें भी विरोध नहीं है। मैत्रेय ने श्रावक प्रत्येक बुद्ध के अभिसमय यानी असाधारण वस्तुज्ञान की दृष्टि से कहा और चन्द्रकीर्ति ने स्थूल स्कन्ध के

तात्विक असद् ज्ञान होने के आधार पर, इस प्रकार वस्तुत: उनमें विरोध नहीं है। पुद्गल नैरात्म्य ज्ञान के लिए दो निरवयवों का असद् ज्ञान होना आवश्यक नहीं है। जैसे माया घट-गो-अश्व आदिके निस्वभावता ज्ञान के लिए अनेक कारणभूत मृत्पण्डादि की नि: स्वभावता का ज्ञान होना आवश्यक नहीं है। उसी प्रकार अभिसमयालंकार, प्रज्ञानाममूलकारिका, मध्यमकावतार, मध्यमकालंकार और उत्तरतन्त्र आदि शास्त्रों में त्रावक, प्रत्ये बुद्ध के ज्ञान एवं प्रहाण, बोधिसत्व का सप्तमभूमि में सम्पन्न होना, दोनों आवरणों की विशेषता, उनके स्वरूप, कारण और कारित्र के आधार पर व्यवस्था करना, वस्तु अवस्था मे, अर्थात जीवावस्था में त्रिकाय एवं पंचज्ञानात्मक तथागतगर्भ का होना आदि शास्त्रों का अभिप्राय परस्पर अविरूद्ध माना जाता हैं।

यदि यह कहा जाय कि तब स्वतान्त्रिक एवंप्रसंगि माध्यमिक मत का भेद कैसे किया जायगा, तो उसका उत्तर यह समझना चाहिए-प्रतिज्ञापूर्वक पर्यायपरमार्थ का विशेष प्रतिपादन करते हुए माध्यमिक मत का आख्यान करने वालों को स्वतान्त्रिक माध्यमिक एवं सभी प्रकार की प्रतिज्ञा से विनिर्युक्त होकर अपर्यायपरमार्थ का विशेष रूप से प्रतिपादन करने बालों को प्रासंगिक माध्यमिक कहा जाता है। इस प्रकार दोनों की दाशनक प्रतिपत्तियाँ भिन्न होते हुए भी अन्तिम रूप से दोनों की दृष्टि मे कोईअन्तर नहीं है।ऐसा जानना चाहिए।

अनुत्तर तन्त्र के आधार पर भेद

सामान्यत: सूत्रमय से मन्त्रनय उत्कृष्ट है, जैसे "त्रिनय दीपिका" में कहा गया है कि "एक ही उद्देश्य होते हुए" भी

असंमोह, उपाय की अधिकता, सुगमता एवं तीव्र इन्द्रिय के आधार पर मन्त्रनय उत्कृष्ट होता है। इस प्रकार वस्तुप्रभास्वरसार, उसके आधार पर निरूपित धर्म एक ही साध्य होते हुए भी सूत्रों में वस्तु प्रतिपत्ति एवं फल के प्रतिपादन में व्यामोह रहता है। मन्त्रनय की यह विशेषता है कि उसमें इस तरह का वयामोह नहीं होता है। सूत्र का परमार्थ, अनुमान प्रमाण का विषय होने से बुद्धि कृत्त वस्तु है। स्कन्ध आदि व्यापक संवृत्ति धर्म मात्र हेयोपादेयता के रूप में दिखाए जाते हैं। इस मार्ग के अनुसार उत्तमपुद्गल तीन असंख्य कल्पों में ही फल प्राप्त करता है, मन्त्रनय में ऐसा न होकर बिना साधना हेतु की अपेक्षा किये नाडी-बिन्दु आदि के ममहित मात्र से बिना बुद्धि निर्मतज्ञान, निर्विकल्प धर्मकाय का सार निरूपित किया जाता है। वहीं औदारिक प्रभास्वर मंडल के रूप में प्रारम्भ में सिद्ध वस्तु तन्त्र का प्रतिपादन करके बिनासंवृतिगत हेयोपादेयता के शुद्ध समस्त सत्य की अभिन्नता का निरूपित करने में समर्थ होता है। उसी मार्ग के आधार पर उत्तमपात्र एक ही जीवन मे युगनद्ध पद को प्राप्त कर सकता है। उपाय अधिकता की दृष्टि से भी मन्त्रनय अधिक महत्व रखता है। क्योकि वह प्रहेय एक राग के प्रहाण में भी साधारण रूप से उत्पन्न क्रम को तथा असाधारण रूप से उत्पन्न प्रतिपत्ति को महासुख मार्ग के रूप में समुत्थित करने अर्थात बिनाप्रहाण के ही संशुद्धीकरण करने में समर्थ होता है। सूत्र पक्ष में इस प्रकार का उपाय नहीं होता है।

सुगमता की दृष्टि से भी मन्त्रनय विशिष्ट होता है, क्योंकि सुत्रनय का मार्ग भी हेयोपादेयता रूप कठोर आचारण के द्वारा सिद्ध करना पडता हैं। मन्त्रनय में से सब सहायक के रूप में समुदित होने एवं हेयोपादेय की शुद्धता के कारण कामगुणों के

आधार पर ही सिद्ध होता है।

तीव्र इन्द्रिय वाले के मार्ग होने से अल्प प्रयास से ही परमबोधि की प्राप्ति की जा सकती है। न केवल इसप्रकार चार विशेषताओ के आधार पर मन्त्रनय सूत्रनय से विशिष्ट है अपितु अचिन्त्य "राल्री तन्त्र" मे मन्त्रनय को सुत्रनय की अपेक्षा पन्द्रह विशेषताओं विशिष्ट बताया गया है । इस प्रकार अतिविशिष्ट मन्त्र निकाय को चार भागों में संगृहीत किया जाता है। क्रियायोग, चर्यायोग, योगतन्त्र और अनुत्तरतन्त्र इनमें से अनुत्तर तन्त्र का विभाजन विकास , अनुष्ठान आदि के आधार पर मन्त्रनय में सर-मा और निङ-मा इन दो रूपों में किया जाता है।

महा लोचा-वा वैरोचन, विमलमित्र, कुमार आदि के अतियोग चित्तनिकाय तन्त्र, रिग-पई-खु-जुग (विद्या कोकिल) चल-छेन-टुल-पा (महाविक्रान्त निर्मितक) ख्युङ-छेन-दिङ-वा (महागरूडोडान) आदि अठारह तन्त्र सम्मिलित है। लोङ-दे ग्युद (धातु निकाय तन्त्र) जिसमें खोर-वा दोङटुग (संसार कूपमन्थर) रिन-पो-छे-संङ-वई-ग्युद् (रत्न गुहय तन्त्र) जा-चोल-मेद-पई-ग्युद (क्रियत्नाभावतन्त्र) आदि एक लाख तन्त्र है। जोग-छैन-मन-ङग-घि-ग्युद (अतियोगोपदेशतन्त्र) जिसमें पद्म-लोङ सल (पद्म धातु अपोह) पद्म-वङ-ग्यस् (पद्मवश औदारिक), आदि पन्द्रह हजार तन्त्र है। सामान्य अतियोग तन्त्र नम-ख-छेइ-ग्युद (महागगनतन्त्र) छोस्-निद-ग्यल-वई-ग्युद (जिनधर्मतातन्त्र), जाङ-सेम-थिग-लेइ-ग्युद् (बोधिचित्य बिन्धु तन्त्र) मन-ङग-ठेङ-वइ-ग्युद (आकाशाधातुविशुद्धितन्त्र) ये-सङ-ग्यास-पई ग्युद (आदिबुद्ध तन्त्र) इत्यादि पच्चिस मुख्य निकायों का, गुहय तन्त्र के बाहय एवं आध्यात्मिक तन्त्रों का भी उन लोगों द्वारा अनुवाद किया गया। आगम, अभिषेक, उपदेश द्वारा अनुष्ठान करने वाली परम्परा

को ङ-ग्युर-निङ-मा-पा कहा जाता है।

कालान्तर में प्रमुख लो-चा-वा रिनछेन-संङ-पो (रत्नभद्र) आदि परवर्ती लोचावों द्वारा मुख्य रूप से पित चक्रगुहयसमाज, ज्ञानवज्रसमुच्चय, दस महाक्रोध तन्त्र आदि, तथा मातृतन्त्र वज्रसत्वव्युह, चक्रसंवर आदि अद्वयमंजुश्रीमूलकल्प,मायाजाल, कालचक्र तन्त्र आदि तन्त्रों का अनुवाद किया गया। उनके अनुष्ठान करने वालों को उत्तर अनूदित "सर-मा-पा" कहा जाता है।

सर-निङ यानी नवीनप्राचीन परम्परा के सद्ध विद्वानों द्वारा अनुष्ठेय उत्तर तन्त्रनय में भी तीन आन्तरिक भेदों में भी निचली भूमि से ऊपर की भूमिया उत्कृष्ट होती है। उत्तर अद्वय तन्त्र में भी आभ्यसार तीन भेद होते हैं अद्वय मातृ-पितृ और अद्वय। इन तीनों में से अद्वय अद्वयतन्त्र सभी तन्त्रों में परमोत्कृष्ट माना जाती है। अत: अर्वाचीन सङ-ङग-सर-मा यानी अर्वाचीन अद्वयतन्त्र निकाय के कालचक्र, द्विपटल हेवज्रतन्त्रराज, महामुद्रातन्त्रों में प्रमुख रूप से स्वमात्र एवं परमात्र उपाय पर आश्रित योग के आधार पर प्रधानतया प्रतिरूप ज्ञान के द्वारा वास्तविक ज्ञान का साक्षातकार करने का विधान है, और ये तृतीय प्रज्ञा अभिषेक के प्रमुख अनुष्ठेय है।इसलिए उन तन्त्रों को अनुत्तर मातृ तन्त्र ही मानना चाहिए।कालचक्रतन्त्र में भी उपाय का आधार परमात्रके आधार पर चार-आठ और सोलह आनन्दों के द्वारा सुखशुन्य ज्ञान अनुभव किया जाता है और उसके द्वारा सहजप्रकृतिज्ञान का साक्षात्कार होता है। इस प्रकार अर्वाचीन "सर-मा-पा" लोग मुख्य रूप से तृतीय अभिषेक का अर्नुष्ठान करते हैं।

"निङमा-पा" के आतियोग तन्त्रों में चौथे अभिषेक विशेष रूप से दिखाया जाता है, इसमें वस्तुगत प्रतीयमान भव एवं भवन्तर सभी धर्म स्वभावशून्यधर्मकाय, प्रकृतिप्रभास्वरसम्भोग

काय, अप्रतिहत आभासमान निर्माण काय का आदि से यथावत् अनुष्ठान किया जाता है और अनाभौगिक चार आश्वस्त सीमा तक पहूचाने वाले व्यक्तिक्रान्त मार्गो की भावना की जाती है। चारिकविधिनिषेध एवं हेयोपादेय के बिना आचरण करते हुए फल अनाभौगिक रूप से सम्पन्न समन्तभद्र भूमि में अभी से स्थित एवं पारंगत होकर आदि भूमि प्राप्त होकर विमुक्त हो जाता है। इस तरह अतियोग तन्त्रों द्वारा चिन्त की प्रकृति त्रिकाय पंचज्ञानात्मक आदित: ज्ञात उस ज्ञान को विधि निषेध एवं उहा-अपोह-के बिना पूर्ण रूप से निरूपित किये जाने के कारण उसे सभी तन्त्र निकायों मे राजा की तरह और समस्त उपदेशों का सारभूत माना गया है।इस दृष्टि से [illegible] वे सभी आठ यान मार्ग के सोपान मात्र के अतिरिक्त नीचे के उन यानों में पूर्णतया उत्पन्न एवं निष्पन्न मार्गो का प्रति पादन नहीं होता है।

सामान्यत: निङ-मा के नौ यानों की व्यवस्था अतियोग तन्त्रों के अभिप्राय से की गई है। यह भी अतिमहाव्यूहतन्त्र में-नौ क्रम बुद्धि के अनुसार है कहा गया है और थल-ग्युर-चा-ग्युद (ऋजुमूलतन्त्र) में भी - "इस प्रकार नौ के आधार पर सम्भूत नौ यान हो जाते हैं, समुदाय उन्नयन, तपस्याविद्या, वशीकरण उपायमान है" इत्यादि कहा गया है।

इस प्रकार सूत्र, तन्त्रनय की सभी दृष्टियों का अन्तिम सार यही अतियोग दृष्टि है। उसे अभिषेक, उपदेश द्वारा अविपरीत रूप से अनुष्ठान करना "निङ-मा-पा" का असाधारण हस्तगत अनुष्ठेय है। अत: निङ-मा-पा के दर्शन, भावना एवं चर्या सभी अन्य मतों में मूर्धनगत है, ऐसा माना जाता है।

अतियोग दर्शन एवं साधना की परम्परा तीन या पांच दिशाओं में प्रचलित थी, लेकिन उन महापुरूष कुन-ख्येन-लोङ-

छेन-रब-जम-पा में इन समस्त पाचों की समरसता दिखलाई पडती है। उन्होंने अतियोग तन्त्र निकाय, उनके व्याख्यागत शास्त्रों एवं उनके अन्तर्गत उपदेशों के सारांश के रूप में प्रमुख मन्-ङग-जोद् (उपदेश कोश) छोस्-ईङ-चोद (धर्मधातुकोश) नस-लुग-जोद (तथता कोश) सहित सात कोशों की रचना की जिनको "लोङ-छेन-जोद-दुन" (लोङ-छेन सप्तकोश) कहा जाता है। साथ ही आपने "गुहय गर्भ तन्त्र" पर महाभाष्य आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की। उनके बाद, उनके ज्ञानकाय के साक्षात शिष्य कुन-ख्येन-जिग-मेद-लिंग-पा एवं रिग-जिन-ग्यल-वई-न्युगु आदि महान सिद्ध पुरूषों ने उनके ज्ञान प्रकाश को चारों ओर फैलाया। जिनकी परम्परा आज तक अविच्छिन्न रूप में चली आ रही है।

इस प्रकार उन महापुरूषों के आशयों के अनुसार हमने यहाँ कुछ बातें आपके समक्ष प्रस्तुत की है, जिससे
प्राप्त कुशलमूलों को पदार्थ सम्पादन हेतु के रूप मे हम परिणामना एवं प्रतिधान करते हैं।

सर्वमंगलम्